नईदुनिया

संपादकीय

तीन छात्राएं, एक बिस्तर

आदिवासी छात्रावासों की सच्चाई

धार *जिले के निसरपुर पुनर्वास स्थल स्थित माता शबरी आदिवासी कन्या छात्रावास की तस्वीर ने प्रदेश की आंखें खोल दी हैं। रविवार रात 40 छात्राएं छात्रावास की खिड़की की ग्रिल काटकर बाहर निकलीं और ढाई किलोमीटर पैदल चलकर थाने पहुंच गईं। वजह थी असहनीय भीड़, गंदगी और बुनियादी सुविधाओं का अभाव। 50 की क्षमता वाले छात्रावास में 140 छात्राओं को ठूंस दिया गया है। एक बेड पर तीन-तीन छात्राएं सोने को मजबूर हैं। न साफ पानी है, न ठीक से शौचालय और न पढ़ाई के लिए पर्याप्त जगह। यह हालात आदिवासी छात्रावासों की हकीकत का आईना हैं।*

छात्राओं का गुस्सा जायज है। जो बच्चियां शिक्षा के सपने लेकर घर से निकली थीं, उन्हें छात्रावास के नाम पर जेल जैसी जिंदगी मिल रही है। रात बारह बजे खिड़की से भागने की नौबत आ जाए तो समझिए व्यवस्था कितनी बदतर है। अधिकारियों के आश्वासन के बाद छात्राएं रात दो बजे वापस लौटीं, लेकिन सवाल यह है कि आश्वासन से पेट भरता है या बिस्तर मिलता है?

सरकार हर साल आदिवासी कल्याण के नाम पर करोड़ों रुपये खर्च करती है। बजट में छात्रावासों के निर्माण, मरम्मत, भोजन और छात्रवृत्ति के लिए बड़ी घोषणाएं होती हैं। दौरे होते हैं, फोटो खिंचते हैं और फाइलें बंद हो जाती हैं, लेकिन जमीन पर स्थिति जस की तस रहती है।

निसरपुर का छात्रावास मूल रूप से 50 सीटर उत्कृष्ट छात्रावास के लिए बना था, लेकिन इसमें कन्या शिक्षा परिसर भी चलाया जा रहा है। नतीजा क्षमता से लगभग तीन गुना ज्यादा बच्चे और संसाधन वही। कई छात्रावासों में क्षमता से अधिक बच्चे रहते हैं, शौचालयों पर लंबी कतारें लगती हैं और भोजन के नाम पर खानापूर्ति होती है।

सवाल यह है कि बजट की मोटी रकम खर्च कहां हो रही है? निर्माण में घटिया सामग्री, मरम्मत में खानापूर्ति और रखरखाव की अनदेखी छात्रावासों को खोखला कर रही है।

स्टाफ की कमी और फंड में देरी के तर्क अब पुराने पड़ चुके हैं। अगर क्षमता 50 है तो 140 प्रवेश क्यों दिए गए? अगर भवन छोटा है तो नए भवन क्यों नहीं बने? भोजन और साफ-सफाई की निगरानी कौन कर रहा है? जवाबदेही तय करना जरूरी है।

सरकार को तत्काल अतिरिक्त भवन उपलब्ध कराने, भोजन, पानी और सफाई की व्यवस्था सुधारने और हर जिले में छात्रावासों का सर्वे कराना चाहिए। क्षमता और वास्तविक संख्या का मिलान हो, नए भवन समय सीमा में बनें और हर खर्च का सोशल ऑडिट हो। लापरवाही करने वाले अधिकारी, घटिया काम करने वाले ठेकेदार और फर्जी हाजिरी बनाने वाले कर्मचारियों पर कठोर कार्रवाई होनी चाहिए। आदिवासी बच्चों के भविष्य से खिलवाड़ करने वालों को बख्शा नहीं जा सकता।

निसरपुर की घटना उन आदिवासी बच्चों की चीख है, जो सरकारी वादों पर पढ़ने आए हैं और जिन्हें घुटन, भीड़ और उपेक्षा मिल रही है। आदिवासी बेटियों की शिक्षा से ही प्रदेश का भविष्य बनेगा। छात्रावासों को केवल कागजों में नहीं, जमीन पर भी बेहतर बनाना होगा, वरना खिड़कियों से निकलने वाली छात्राओं की संख्या बढ़ती जाएगी और सरकारी दावों की कलई उतरती जाएगी।

आजकल

स्क्रीन से हटकर जिंदगी की ओर जेन जी का डिजिटल डिटॉक्स

पिछले एक दशक में मोबाइल ने जिंदगी आसान की, लेकिन अब वही मानसिक थकान का कारण बन गया है। लगातार नोटिफिकेशन, रील्स और ऑनलाइन तुलना के दबाव ने जेन जी यानी 1997 से 2012 के बीच पैदा हुई पीढ़ी को प्रभावित किया है। मनोचिकित्सक इसे नोमोफोबिया और डिजिटल बर्नआउट कहते हैं। नींद कम होना और अकेलापन इसके लक्षण हैं।

सबसे बड़ा बदलाव सिनेमा को लेकर दिख रहा है। जेन जी फिर से थिएटर जा रही है। मोबाइल पर अकेले कंटेंट देखने से ऊबे युवा अब दोस्तों के साथ बाहर निकलना चाहते हैं। डार्क हॉल, बड़ी स्क्रीन और बिना रुकावट का अनुभव उन्हें डिजिटल दुनिया से कुछ घंटे की राहत देता है। फिल्म देखना अब केवल मनोरंजन नहीं, सोशल गैदरिंग भी बन गया है।

फिल्मों के साथ जेन जी खेल और फिजिकल एक्टिविटी की तरफ भी लौट रही है। कॉलेज कैंपस में बैडमिंटन, फुटबॉल और रनिंग क्लब की सदस्यता बढ़ी है। जिम में ग्रुप वर्कआउट और आउटडोर स्पोर्ट्स का क्रेज बढ़ा है। कारण है - स्क्रीन टाइम कम करके मानसिक स्वास्थ्य बेहतर करना और असली दुनिया में दोस्त बनाना।

जेन जी का यह बदलाव पूर्ण बहिष्कार नहीं, बल्कि संतुलन की कोशिश है। वे मोबाइल छोड़ नहीं रहे, बल्कि उसे सीमित कर रहे हैं। कुछ वीकेंड पर डिजिटल डिटॉक्स करते हैं और कुछ कंटेंट को चुनकर देखते हैं। यह पीढ़ी समझ गई है कि लगातार स्क्रॉल करने से थकान मिलती है। इसलिए वे फिल्में, किताबें, संगीत और खेल चुन रही हैं।

जेन जी का यह कदम संकेत है कि तकनीक के साथ जीना है, लेकिन तकनीक का गुलाम नहीं बनना है। मोबाइल से ऊबकर वे दोबारा असली दुनिया की तरफ लौट रहे हैं। थिएटर की भीड़, स्टेडियम की आवाज और दोस्तों के साथ हंसी अब उन्हें ज्यादा सुकून दे रही है। अगली पीढ़ी डिजिटल और फिजिकल दोनों दुनिया में संतुलन चाहती है।

सरकारी कामकाज में नया मानदंड...

अब कंप्यूटर चलाने के साथ साइबर सुरक्षा भी जरूरी

सरकारी दफ्तरों का कामकाज अब पूरी तरह कंप्यूटर और इंटरनेट पर आ गया है। फाइलें ऑनलाइन चलती हैं, वेतन पोर्टल पर बनते हैं और योजनाओं की मॉनिटरिंग डिजिटल डैशबोर्ड से होती है। ऐसे में सिर्फ कंप्यूटर ऑन-ऑफ करना और टाइपिंग आना अब पर्याप्त नहीं रहा। मध्यप्रदेश सरकार ने तय किया है कि सरकारी कामकाज से जुड़े हर अधिकारी और कर्मचारी को साइबर सुरक्षा की समझ भी होनी चाहिए। अगर कोई कर्मचारी 50 क्रेडिट पॉइंट नहीं जुटा पाता है तो उसके वेतन पर असर पड़ सकता है। यह नियम नगर निगम, नगर पालिका और नगर परिषद के कंप्यूटर ऑपरेटरों पर भी लागू होगा।

नगरीय प्रशासन और विकास विभाग ने इस संबंध में निर्देश जारी किए हैं। अब केवल तकनीकी जानकारी ही नहीं, बल्कि डेटा की सुरक्षा, मजबूत पासवर्ड और साइबर हमलों से बचाव की जानकारी भी जरूरी होगी। इसका मकसद सरकारी डेटा को सुरक्षित रखना और आम जनता की निजी जानकारी को लीक होने से बचाना है।

नए नियम के अनुसार हर सरकारी कर्मचारी को तय समय में 50 क्रेडिट पॉइंट पूरे करने होंगे। ये पॉइंट ऑनलाइन कोर्स और प्रशिक्षण के जरिए जुटाए जाएंगे। कोर्स में साइबर सुरक्षा के बुनियादी सिद्धांत, मजबूत पासवर्ड बनाना, फिशिंग ईमेल की पहचान, सरकारी पोर्टल का सुरक्षित इस्तेमाल और डेटा लीक होने पर उठाए जाने वाले कदम जैसी बातें शामिल होंगी।

अगर कोई कर्मचारी यह लक्ष्य पूरा नहीं करता है तो उसकी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट और वेतन वृद्धि पर असर पड़ सकता है। विभाग का मानना है कि जब तक हर स्तर के कर्मचारी को साइबर सुरक्षा की समझ नहीं होगी, तब तक सरकारी सिस्टम पूरी तरह सुरक्षित नहीं हो सकता।

सबसे ज्यादा जोर कंप्यूटर ऑपरेटरों पर दिया गया है, क्योंकि वही रोजाना सरकारी पोर्टल पर डेटा फीड करते हैं और जनता की निजी जानकारी से सीधे जुड़े होते हैं। अब ऑपरेटरों को केवल टाइपिंग और सॉफ्टवेयर चलाना ही नहीं, बल्कि साइबर हमलों की पहचान और उनसे बचाव के तरीके भी सीखने होंगे। उनके लिए अलग मॉड्यूल तैयार किया जाएगा, जिसमें पासवर्ड प्रबंधन, दो चरणों में सत्यापन और संदिग्ध लिंक से बचने की ट्रेनिंग दी जाएगी। परीक्षा पास करने के बाद ही उन्हें आगे काम करने की अनुमति मिलेगी। यह कदम इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि साइबर हमलों की शुरुआत कई बार मानवीय गलती से होती है।

पिछले कुछ वर्षों में सरकारी वेबसाइटों और पोर्टलों पर साइबर हमलों का खतरा बढ़ा है। हैकर्स सरकारी डेटा चुराकर उसका दुरुपयोग कर सकते हैं या फिरौती मांग सकते हैं। ऐसे में सिर्फ फायरवॉल और एंटीवायरस से काम नहीं चलता। हर कर्मचारी को अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी। एक कमजोर पासवर्ड, संदिग्ध लिंक पर क्लिक या अनजान ईमेल खोलना पूरे सिस्टम के लिए खतरा बन सकता है।

नगरीय प्रशासन विभाग ने सभी नगर निगम आयुक्तों, संयुक्त संचालकों और मुख्य नगरपालिका अधिकारियों को पत्र भेजकर कहा है कि वे अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को नए नियम की जानकारी दें और समय पर कोर्स पूरा करवाएं। ऑनलाइन पोर्टल पर होने वाले हर काम का रिकॉर्ड रखा जाएगा, ताकि लापरवाही की स्थिति में जिम्मेदारी तय की जा सके।

इस नियम को लेकर कर्मचारियों में मिली-जुली प्रतिक्रिया है। कुछ इसे जरूरी कदम मानते हैं। उनका कहना है कि आज के समय में साइबर सुरक्षा की जानकारी हर कर्मचारी को होनी चाहिए। वहीं कुछ कर्मचारी इसे अतिरिक्त बोझ मान रहे हैं। उनका कहना है कि पहले से काम का दबाव अधिक है और अब कोर्स तथा परीक्षा की जिम्मेदारी भी बढ़ जाएगी। यह चिंता अपनी जगह है, लेकिन सरकारी कामकाज में डिजिटल निर्भरता को देखते हुए साइबर सुरक्षा को अतिरिक्त काम के बजाय काम का हिस्सा मानना होगा।

शुरुआत में दिक्कत हो सकती है, लेकिन धीरे-धीरे यह व्यवस्था आदत बन जाएगी। बैंकिंग और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में साइबर सुरक्षा को लेकर कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है। अब सरकारी विभागों में भी इसी तरह की जागरूकता जरूरी है। डिजिटल व्यवस्था जितनी तेजी से बढ़ रही है, उसकी सुरक्षा के लिए कर्मचारियों की समझ भी उसी गति से बढ़नी चाहिए।

डिजिटल इंडिया का सपना तभी पूरा होगा, जब तकनीक के साथ जिम्मेदारी भी आए। सरकारी दफ्तरों में रोजाना बड़ी मात्रा में नागरिकों से जुड़ा डेटा तैयार और इस्तेमाल होता है। इसमें व्यक्तिगत जानकारी से लेकर योजनाओं, भुगतान और प्रशासनिक रिकॉर्ड तक शामिल होते हैं। इसलिए डेटा की सुरक्षा केवल आईटी विभाग की जिम्मेदारी नहीं हो सकती। जिस कर्मचारी के हाथ में डेटा है, उसकी भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण है।

इस प्रशिक्षण को आसान और रोचक बनाया जाना चाहिए। वीडियो ट्यूटोरियल, लाइव वेबिनार और आसान भाषा में गाइड उपलब्ध कराई जाएं, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले कर्मचारी भी इसे आसानी से समझ सकें। साथ ही समय-समय पर मॉक ड्रिल और साइबर हमले का अभ्यास कराया जाए, ताकि वास्तविक स्थिति में कर्मचारी घबराएं नहीं और तुरंत सही कदम उठा सकें।

नगर पालिकाओं और नगर परिषदों में आईटी सेल को भी मजबूत किया जाना चाहिए। किसी कर्मचारी को संदिग्ध गतिविधि या साइबर हमले की जानकारी मिले तो रिपोर्टिंग और समाधान की व्यवस्था तुरंत उपलब्ध होनी चाहिए। प्रशिक्षण तभी प्रभावी होगा, जब उसके साथ तकनीकी सहायता और स्पष्ट जवाबदेही भी हो।

कंप्यूटर चलाना आना अब पुरानी बात हो गई है। समय की मांग है कि हर सरकारी कर्मचारी सुरक्षित तरीके से डिजिटल सिस्टम का इस्तेमाल करना सीखे। मध्यप्रदेश सरकार का 50 क्रेडिट पॉइंट वाला नियम इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह केवल प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं, बल्कि सरकारी कामकाज की बदलती जरूरत का संकेत है।

बात सिर्फ नियम लागू करने की नहीं, आदत बदलने की है। जब हर कर्मचारी यह समझेगा कि उसकी एक छोटी-सी गलती पूरे सिस्टम और लाखों लोगों की जानकारी को खतरे में डाल सकती है, तभी डिजिटल शासन वास्तव में सुरक्षित और मजबूत बनेगा। तकनीक सरकारी कामकाज को तेज और आसान बना सकती है, लेकिन उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी इंसान को ही निभानी होगी।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

बारहवीं तक पहुंचते-पहुंचते गायब हो गए 73 फीसदी बच्चे

भारत में शिक्षा को लेकर हर साल बड़े-बड़े दावे किए जाते हैं। नई शिक्षा नीति, कौशल विकास और डिजिटल क्लासरूम की बातें होती हैं, लेकिन जमीनी हकीकत इन दावों से बहुत अलग है। आज भी देश में करोड़ों बच्चे ऐसे हैं, जो स्कूल की सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते रास्ते में ही उतर जाते हैं। ताजा सरकारी आंकड़ों के मुताबिक, कक्षा एक में दाखिला लेने वाले 100 बच्चों में से केवल 27 बच्चे ही बारहवीं तक पहुंच पाते हैं। बाकी 73 फीसदी बच्चे बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। यह आंकड़ा चिंता का विषय है, क्योंकि यह सीधे देश के भविष्य से जुड़ा हुआ है।

गिरावट की सबसे बड़ी वजह स्कूलों की कमी है। देश में 10.92 लाख सरकारी और सहायता प्राप्त स्कूल हैं, लेकिन इनमें से केवल 1.61 लाख स्कूल ही माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर के हैं। इसका मतलब साफ है कि प्राथमिक स्कूल तो गांव-गांव में मिल जाएंगे, लेकिन आगे पढ़ने के लिए बच्चों को कई किलोमीटर दूर जाना पड़ता है। ग्रामीण इलाकों में जहां परिवहन की सुविधा नहीं है और लड़कियों की सुरक्षा एक मुद्दा है, वहां माता-पिता 8वीं के बाद बच्चों को घर बैठा लेते हैं। नतीजा यह होता है कि एक बच्चा, जो पढ़ने में होशियार भी है, वह सिर्फ स्कूल दूर होने के कारण आगे नहीं पढ़ पाता।

नई शिक्षा नीति में यह लक्ष्य रखा गया था कि देश की जीडीपी का 6 फीसदी हिस्सा शिक्षा पर खर्च होगा, लेकिन आज भी हम 4 फीसदी के आसपास ही अटके हुए हैं। जब तक बजट नहीं बढ़ेगा, तब तक न नए स्कूल बनेंगे, न शिक्षकों की भर्ती होगी और न ही लैब, लाइब्रेरी और कंप्यूटर जैसी जरूरी सुविधाएं मिलेंगी। आज भी 6 करोड़ से ज्यादा बच्चे स्कूल से बाहर हैं। इनमें से 1.64 करोड़ बच्चे माध्यमिक स्तर तक आते-आते पढ़ाई छोड़ देते हैं। सरकार कहती है कि शिक्षा सबका अधिकार है, लेकिन अधिकार तब तक कागज पर ही रहेगा, जब तक उसे जमीन पर उतारने के लिए पैसा और संसाधन नहीं लगेंगे।

शिक्षकों की कमी भी ड्रॉपआउट का एक बड़ा कारण है। आज भी हजारों स्कूल ऐसे हैं, जहां एक या दो शिक्षक पूरे स्कूल को संभाल रहे हैं। कई जगह विज्ञान, गणित और अंग्रेजी जैसे विषयों को पढ़ाने वाला कोई नहीं है। जब नींव ही कमजोर होगी तो बच्चा 9वीं और 10वीं में आकर फेल होगा या खुद ही पढ़ाई छोड़ देगा। शिक्षक भर्ती में देरी, पदों का खाली रहना और प्रशिक्षण का अभाव, इन सबका असर सीधे कक्षा में दिखता है। एक योग्य और प्रेरित शिक्षक ही बच्चे को स्कूल से जोड़े रख सकता है, लेकिन आज व्यवस्था उसे वह सम्मान और संसाधन नहीं दे पा रही। सामाजिक और आर्थिक कारण भी इस समस्या को बढ़ा रहे हैं। गरीब परिवारों में 10वीं के बाद बच्चों को कमाने के लिए भेज दिया जाता है, क्योंकि घर की आर्थिक स्थिति पढ़ाई की इजाजत नहीं देती। लड़कियों के मामले में सुरक्षा और शादी की चिंता सबसे ऊपर आ जाती है। दूरदराज के इलाकों में उच्च माध्यमिक स्कूल न होने के कारण बच्चियां आगे नहीं पढ़ पातीं। अगर हर पंचायत स्तर पर एक उच्च माध्यमिक स्कूल हो और लड़कियों के लिए छात्रावास और छात्रवृत्ति की व्यवस्था हो तो बहुत से बच्चे पढ़ाई जारी रख सकते हैं।

कोरोना के बाद ऑनलाइन शिक्षा को लेकर बहुत उम्मीदें थीं, लेकिन हकीकत यह है कि ग्रामीण भारत में अब भी इंटरनेट और स्मार्टफोन की पहुंच सीमित है। सरकारी स्कूलों में स्मार्ट क्लास और कंप्यूटर लैब की घोषणाएं तो होती हैं, लेकिन जमीनी स्तर पर बदलाव बहुत धीमा है। जब तक डिजिटल डिवाइड खत्म नहीं होगा, तब तक तकनीक शिक्षा का समाधान नहीं बन सकती। उल्टा यह अमीर और गरीब के बीच की खाई को और गहरा कर देगी।

हमारी शिक्षा प्रणाली की एक और कमजोरी यह है कि वह अभी भी रटंत पर टिकी हुई है। बच्चों को अंक लाने के लिए पढ़ाया जाता है, समझने के लिए नहीं। 12वीं पास करने के बाद भी बहुत से छात्र कॉलेज या नौकरी के लिए तैयार नहीं होते, क्योंकि उनमें तर्क क्षमता और समस्या समाधान का कौशल नहीं होता। जब शिक्षा का मकसद केवल परीक्षा पास करना रह जाए तो बच्चे का मोहभंग होना तय है और वह पढ़ाई छोड़ देता है। इस स्थिति को बदलने के लिए तुरंत कदम उठाने होंगे। सबसे पहले शिक्षा का बजट बढ़ाकर जीडीपी का 6 फीसदी तक ले जाना होगा। दूसरा, हर 5 किलोमीटर के दायरे में एक माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्कूल खोलने की योजना बनानी होगी। तीसरा, शिक्षक-छात्र अनुपात को बेहतर करना होगा और शिक्षकों की समय पर भर्ती और प्रशिक्षण सुनिश्चित करना होगा। चौथा, ड्रॉपआउट रोकने के लिए समुदाय, पंचायत और स्थानीय संगठनों को साथ लेना होगा और पांचवां, शिक्षा की गुणवत्ता को मापने के लिए हर साल स्वतंत्र मूल्यांकन कराना होगा।

सरकार ने नई शिक्षा नीति 2020 के जरिए एक अच्छी शुरुआत की है। उसमें कौशल विकास, बहुभाषी शिक्षा और लचीलापन जैसी बातें हैं, लेकिन नीति तब तक सफल नहीं होगी, जब तक उसे लागू करने के लिए इच्छाशक्ति और पैसा न हो। किताबें समय पर पहुंचें, पाठ्यक्रम में बदलाव के साथ शिक्षकों को प्रशिक्षण मिले और बोर्ड पैटर्न में बदलाव के बारे में छात्रों को पहले से जानकारी हो, तभी बदलाव जमीनी स्तर पर दिखेगा।

स्वास्थ्य के बाद अगर कोई क्षेत्र सबसे ज्यादा महत्व रखता है तो वह शिक्षा है। एक शिक्षित युवा ही देश को आगे ले जा सकता है, लेकिन अगर हम आज 73 फीसदी बच्चों को बारहवीं तक नहीं पहुंचा पा रहे तो 2047 के विकसित भारत का सपना अधूरा रह जाएगा। उद्योग को कुशल कारीगर चाहिए, शोध के लिए जिज्ञासु दिमाग चाहिए और लोकतंत्र के लिए जागरूक नागरिक चाहिए और यह सब स्कूल से ही शुरू होता है। यह समस्या केवल सरकार की नहीं है, यह समाज की भी है। माता-पिता को भी यह समझना होगा कि बेटा या बेटी 10वीं के बाद कमाने लगे तो शायद दो पैसे घर में आ जाएंगे, लेकिन लंबी दौड़ में वह पीछे रह जाएगा। स्कूलों को भी बच्चों को सिर्फ नंबर के लिए नहीं, बल्कि जीवन के लिए तैयार करना होगा। मीडिया को भी ड्रॉपआउट को केवल आंकड़ा नहीं, बल्कि एक मानवीय संकट के रूप में दिखाना होगा। भारत का भविष्य उन कक्षाओं में बैठे बच्चों में है, जो आज बीच में ही गायब हो रहे हैं। अगर हमने उन्हें नहीं बचाया तो विकास की सभी बातें केवल भाषण बनकर रह जाएंगी। शिक्षा में निवेश का मतलब है देश में निवेश। यह निवेश आज करना होगा, वरना कल बहुत देर हो जाएगी।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

भोपाल का बदलता नक्शा, अब हर घर-दुकान

भोपाल शहर अब पुराने नक्शे से नहीं चल सकता। राजधानी की आबादी बढ़ रही है, ट्रैफिक बढ़ रहा है और लोगों की जरूरतें भी बदल रही हैं। इसी बदलाव को ध्यान में रखकर मास्टर प्लान 2031 में एक बड़ा फैसला लिया गया है। अब भोपाल में हर साल 12 हेक्टेयर अतिरिक्त व्यावसायिक जमीन की जरूरत होगी। यानी हर साल जमीन का कुछ हिस्सा दुकानों, ऑफिसों और अन्य व्यावसायिक गतिविधियों के लिए आरक्षित करना पड़ेगा। 1991 के मास्टर प्लान में यह आंकड़ा 65 हेक्टेयर था, जो 2018 में बढ़कर 405 हेक्टेयर हो गया और अब 2031 तक इसे 5081 हेक्टेयर तक ले जाने की तैयारी है।

यह आंकड़ा शहर की बदलती हकीकत को दिखाता है। पहले भोपाल को झीलों और हरियाली का शहर कहा जाता था, लेकिन अब यह तेजी से बढ़ता व्यावसायिक केंद्र बन रहा है। आईटी पार्क, मॉल, मल्टीप्लेक्स और कॉरपोरेट ऑफिस शहर के हर कोने में नजर आ रहे हैं। पुराने इलाकों में भी व्यावसायिक गतिविधियां बढ़ रही हैं।

भोपाल की आबादी पिछले 30 साल में कई गुना बढ़ी है। 1991 में जो शहर 12 लाख की आबादी के लिए बना था, वह अब 25 लाख से ज्यादा लोगों का घर है। आबादी के साथ रोजगार, बाजार और सेवाओं की जरूरत भी बढ़ी है। पहले लोग काम के लिए एक इलाके से दूसरे इलाके जाते थे। अब ट्रैफिक और समय की बचत के लिए लोग चाहते हैं कि दुकान, ऑफिस और स्कूल उनके घर के पास ही हों। इसी कारण रिहायशी इलाकों में भी व्यावसायिक उपयोग बढ़ गया है। एमपी नगर, न्यू मार्केट और 10 नंबर जैसी जगहें पहले ही कमर्शियल हो चुकी हैं। अब कोलार, अरेरा हिल्स और होशंगाबाद रोड पर भी यही ट्रेंड दिख रहा है।

नए मास्टर प्लान के अनुसार भोपाल में 2031 तक 5081 हेक्टेयर जमीन व्यावसायिक उपयोग के लिए चाहिए होगी। इसमें हर साल 12 हेक्टेयर की अतिरिक्त मांग जोड़ी गई है। इसका मतलब है कि शहर को अब वर्टिकल विस्तार करना होगा। जमीन सीमित है, इसलिए ऊंची इमारतें और मिक्स्ड यूज कॉम्प्लेक्स बनाने होंगे।

प्लान में यह भी कहा गया है कि शहर के कोर एरिया में अब नई व्यावसायिक जमीन नहीं मिलेगी। इसलिए विकास को बाहरी हिस्सों की ओर ले जाना होगा। कोलार रोड, अरेरा हिल्स, होशंगाबाद रोड और बैरागढ़ में नए कमर्शियल हब विकसित किए जाएंगे।

व्यावसायिक जमीन बढ़ने से रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। नए ऑफिस, शोरूम और मॉल खुलेंगे तो युवाओं को नौकरी मिलेगी, शहर की अर्थव्यवस्था मजबूत होगी और राजस्व भी बढ़ेगा।

लेकिन चुनौतियां कम नहीं हैं। सबसे पहली चुनौती ट्रैफिक की है। अगर हर कॉलोनी में दुकानें खुलेंगी और सड़कों पर पार्किंग नहीं होगी तो जाम लगना तय है। दूसरी चुनौती पार्किंग और बुनियादी सुविधाओं की है। पानी, बिजली और सीवेज का लोड पहले से ज्यादा है। तीसरी चुनौती हरित क्षेत्र की है। खुले स्थान कम हुए तो भोपाल की पहचान प्रभावित होगी।

यदि बिना नियम के हर घर के नीचे दुकान खोल दी गई तो कॉलोनियां बाजार में बदल जाएंगी और रहने लायक नहीं रहेंगी। इसलिए मिक्स्ड लैंड यूज की नीति स्पष्ट होनी चाहिए कि कहां कितना व्यावसायिक उपयोग हो सकता है।

व्यापारी वर्ग इस फैसले से खुश है। उनका कहना है कि शहर बढ़ रहा है तो कारोबार के अवसर भी बढ़ने चाहिए। लेकिन आम नागरिक चिंतित हैं। उन्हें डर है कि उनके घर के सामने मॉल और ऑफिस बनने से शांति भंग होगी।

सबसे पहले जरूरी है कि मास्टर प्लान को सख्ती से लागू किया जाए। केवल कागज पर प्लान बनाकर छोड़ देने से काम नहीं चलेगा। नगर निगम और विकास प्राधिकरण को मिलकर तय करना होगा कि कौन से क्षेत्र पूरी तरह कमर्शियल होंगे, कौन से मिक्स्ड होंगे और कौन से पूरी तरह रिहायशी रहेंगे। सार्वजनिक परिवहन को मजबूत करना होगा। अगर मेट्रो और बसें बेहतर होंगी तो लोग निजी वाहन कम इस्तेमाल करेंगे और ट्रैफिक का दबाव घटेगा। हर नए व्यावसायिक प्रोजेक्ट में पर्याप्त पार्किंग और पेड़ लगाना अनिवार्य किया जाए।

भोपाल अब 1991 वाला भोपाल नहीं रहा है। हर साल 12 हेक्टेयर व्यावसायिक जमीन बढ़ाने का फैसला संकेत है कि भोपाल अब केवल प्रशासनिक राजधानी नहीं रहेगा, बल्कि बड़ा आर्थिक और व्यावसायिक केंद्र बनेगा।

लेकिन यह विकास तभी टिकाऊ होगा, जब नियोजित होगा। यदि बिना प्लानिंग के विकास हुआ तो भोपाल की झीलें सिकुड़ेंगी, सड़कें जाम होंगी और रहने की गुणवत्ता गिरेगी। इसलिए सरकार, प्रशासन और जनता को मिलकर सुनिश्चित करना होगा कि विकास हो, लेकिन भोपाल की आत्मा बची रहे। फैसला अब मास्टर प्लान के कागजों से निकलकर जमीन पर लागू होने का है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)